vinoba.in

भूदान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक – साप्ताहिक

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : ३५

सोमवार २ जून, '६६

अन्य पृष्ठों पर

सम्पादक के नाम चिट्ठी ४३४

प्रयोगकर्ता कौन ? —सम्पादकीय ४३५

मेरा 'भी वाद' —विनोबा ४३६

ग्रामदान-कानून अविश्वास पर आधारित न हो —निर्मलचन्द्र ४३८

आन्दोलन के समाचार ४४०

परिशिष्ट

"गाँव की बात"

हम राम का नाम इसलिए लेते हैं कि वह हृदय में रममाण है, आनन्दमय है, उससे हम आनन्द गुण पाते हैं। कृष्ण का नाम लिया तो, वे आकर्षण करते हैं। दुनिया की जितनी अच्छाइयाँ हैं, उनका हमें आकर्षण हो यही उसका परिणाम है। हम हरिनाम लेते हैं, वह सब विकारों का हरण करता है। सारांश, भगवान का एक-एक नाम एक-एक गुण का सूचक है। —विनोबा

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी–१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४२८५

प्राचीन भारत में सर्वोदय

सदाचार का पालन करने का अर्थ है अपने मन और विकारों पर प्रभुत्व पाना। हम देखते हैं कि मन एक चंचल पक्षी है। उसे जितना मिलता है उतनी ही उसकी भूख बढ़ती है और फिर भी उसे संतोष नहीं होता। हम अपने विकारों का जितना पोषण करते हैं, उतने ही निरंकुश वे बनते हैं। इसीलिए हमारे पूर्वजों ने हमारे भोग की मर्यादा बना दी थी। उन्होंने देखा कि सुख बहुत हद तक मानसिक स्थिति है। यह जरूरी नहीं कि कोई मनुष्य धनवान होने के कारण सुखी हो और निर्धन होने के कारण दुखी हो। धनवान अक्सर दुखी और गरीब अक्सर सुखी पाये जाते हैं। करोड़ों लोग सदा निर्धन ही रहेंगे। यह सब देखकर हमारे पूर्वजों ने हमें भोग-विलास से और ऐश-आराम से दूर रहने का उपदेश दिया। हमने हजारों वर्ष पहले के हल से ही काम चलाया है। हमारी झोपड़ियाँ अब भी उसी किस्म की हैं जैसी पुराने जमाने में थीं, और हमारी देशी शिक्षा अब भी वैसी ही है जैसी पहले थी।

हमारे यहाँ जीवन-नाशक स्पर्धा की प्रणाली नहीं थी। हरएक अपना-अपना धंधा या व्यवसाय करता था और नियमित मजदूरी लेता था। यह बात नहीं कि हमें यंत्रों का आविष्कार करना नहीं आता था। परन्तु हमारे बाप-दादा जानते थे कि अगर हमने इन चीजों में अपना दिल लगाया तो हम गुलाम बन जायेंगे और अपनी नैतिक शक्ति खो बैठेंगे। इसीलिए उन्होंने काफी विचार करने के बाद निश्चय किया कि हमें केवल वही करना चाहिए जो हम अपने हाथ-पैरों से कर सकते हैं। उन्होंने देखा कि हमारा सच्चा सुख और स्वास्थ्य अपने हाथ पैरों को ठीक तरह काम में लेने में है। उन्होंने यह भी कहा कि बड़े-बड़े शहर एक फंदा और व्यर्थ का भार हैं और लोग उनमें सुखी नहीं रहेंगे, वहाँ चोर-डाकुओं की टोलियाँ लोगों को सतायेंगी, व्यभिचार व बदी का बाजार गर्म रहेगा और गरीब लोग अमीरों द्वारा लूटे जायेंगे। इसलिए वे छोटे-छोटे गाँवों से संतुष्ट थे।

इस प्रकार के विधानवाला राष्ट्र दूसरों से सीखने के बजाय उन्हें सिखाने के लिए अधिक योग्य है। इस राष्ट्र के पास अदालतें, वकील और डाक्टर थे, परन्तु वे सब मर्यादाओं के भीतर रहते थे। हरएक जानता था कि ये पेशे खास तौर पर श्रेष्ठ नहीं है, साथ ही, ये वकील और वैद्य लोगों को लूटते नहीं थे। वे लोगों के आश्रित माने जाते थे, न कि उनके मालिक। न्याय काफी निष्पक्ष था। साधारण नियम तो अदालतों से दूर ही रहने का था। लोगों को फुसलाकर अदालतों में ले जानेवाले कोई दलाल नहीं थे। यह बुराई भी राजधानियों के भीतर और उनके आसपास ही दिखाई देती थी। साधारण लोग स्वतंत्र जीवन व्यतीत करते और अपना खेती का धंधा करते थे। वे सच्चे स्वराज्य का उपभोग करते थे।

मो. क. गांधी

("हिन्द स्वराज्य" : सन् १९०८, अध्याय : १३)

www.vinoba.in

सम्पादक के नाम चिट्ठी

ग्रामदान के आँकड़े ही बढ़ेंगे या ग्राम-निर्माण का काम भी होगा ?

संपादकजी,

वर्ष १५, अंक २७, सोमवार; ७ अप्रैल, '६९ की 'भूदान-यज्ञ' पत्रिका मैंने पढ़ी और आपके संपादकीय लेख पर काफी देर तक सोचा। अन्तिम अनुच्छेद की अन्तिम ढाई पंक्तियाँ, जो आशा और विश्वास की रोशनी हैं, अध्ययन-लायक हैं। मैं इसका कुछ विस्तार रूप चाहता हूँ और मेरे विचार से वह रूप ऐसा होगा।

आपने लिखा है : "राज्यदान का काम रुके न, लेकिन जिलादानी क्षेत्रों में आन्दोलन में गिरावट न आने दी जाय। दोनों मोर्चों पर काम जरूरी भी है और संभव भी है।"

मेरे विचार से ग्रामदान होने के साथ-साथ ग्रामदानी गाँव में ग्रामसभा-गठन, ग्रामसभा में दानपत्र-समर्पण, और कुल जमीन के बीस भागों में से एक भाग जमीन को भूमिहीनों के बीच वितरण, ग्रामकोष-संग्रह तथा योजना के साथ कृषि-गोपालन का विकास, ग्रामाभिमुख खादी का प्रचलन और ग्रामोद्योग की स्थापना होनी चाहिए। यह निर्माण-कार्य नहीं होने से गाँव के लोग धीरे-धीरे ग्रामदान को भूल जाते हैं और ग्रामदान की वाणी में ओज नहीं रहता है। मेरे विचार से इसमें सन्देह का अवकाश नहीं है और इस सत्य को अस्वीकार करने का अर्थ, जैसा कि मैं सोचता हूँ, आत्मप्रवंचना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। गत पन्द्रह वर्षों से जो ग्रामदान हुए हैं वे केवल आँकड़ों में हैं और ग्रामदान की आत्मा उन ग्रामदानी गाँवों में विलपती रहती है।

ग्रामदानी गाँवों में उपर्युक्त काम ग्रामदान की वृद्धि में सहायक होंगे, बाधक नहीं। ग्रामदान के बाद पंचायत-दान, पंचायत के बाद प्रखण्ड, प्रखण्ड के बाद जिला, जिले के बाद राज्य और राज्यदान के उपरान्त भारतदान की आशा-आकांक्षा रखना स्वाभाविक है और विश्व-शान्ति के लिए, विश्व में साम्य और मैत्री की स्थापना के लिए पृथ्वी-दान का स्वप्न देखना भी अस्वाभाविक नहीं है। ग्रामदान में जो मौलिक भावना है, जो गहरा अर्थ है, विचार की गंभीरता है, साम्य, मैत्री और विश्व-भ्रातृत्व का सुविस्तार रूप है, उसमें विश्वदान का स्वप्न देखना कल्पना-विलासी की काल्पनिक भावना नहीं है, बल्कि वस्तुवादी की वास्तविक धारणा है।

आपके विचार के अनुसार विकास के लिए प्रखण्ड, प्रशासन के लिए जिला और राजनीति के लिए राज्यदान की जैसी आवश्यकता है, शांति, मैत्री और साम्य के लिए पृथ्वीदान की वैसी ही आवश्यकता है। यह ठीक है और उच्च कोटि का विचार भी है। लेकिन इन सबका मूल रूप ग्रामदान है। ग्रामदान में अगर ग्राम-भावना नहीं पनपी, ग्रामदान से लोगों के अन्न-वस्त्र की भौतिक समस्या का समाधान न हुआ, तो यह विकास, प्रशासन और राजनीति में परिवर्तन लाने की कल्पना केवल कल्पना में ही रह जायेगी। इसलिए ग्रामदान की नींव को मजबूत करने के लिए ग्राम-निर्माण करके ग्राम-स्वराज्य की ओर आगे बढ़ने से अन्य सब लक्ष्य हासिल करने में सुविधा होगी और सहज साध्य भी होगा। यह ठीक है कि इसके लिए जितनी पूँजी की आवश्यकता है, वह हमारे पास नहीं है और शायद यही कारण है कि ग्राम-निर्माण, जो ग्रामदान की आत्मा है, पीछे पड़ा हुआ है और हमारे नेताओं की कृपादृष्टि जितनी होनी चाहिए उससे बहुत-बहुत कम है। ग्राम-निर्माण का काम सरकारी कर्मचारियों से नहीं होनेवाला है। इसके लिए चाहिए वह जनसेवक जो ग्रामदान के आदर्श में उद्‌बुद्ध हो, जनता की सेवा में अपने को खो बैठे।

ग्राम-स्वराज्य विद्यालय, गोपालबाडी,
जिला कोरापुट, उड़ीसा —मदनमोहन साहु

खादी-कमीशन का नया फरमान

सम्पादकजी,

आज सुबह झाझा प्रखण्ड (मुंगेर) के एक ग्राम-इकाई के कार्यकर्ता यहाँ आये थे। उनसे मालूम हुआ कि झाझा प्रखण्ड की ग्राम-इकाई टूट रही है। यह सुनकर आश्चर्य और दुःख, दोनों हुआ। और बात करने पर पता चला कि यह निर्णय खादी-कमीशन ने इसलिए किया है कि वहाँ अभी तक खादी-काम की प्रगति संतोषजनक नहीं है। यह निर्णय सात प्रखण्डों के लिए हुआ है, ऐसा भी पता चला है। यह बात कुछ समझ में नहीं आयी। एक ओर तो आप लोग कमीशनसहित त्रिविध कार्यक्रम की बात करते हैं और दूसरी ओर खादी की प्रगति न होने के कारण प्रखण्ड-इकाई बन्द की जाती है। खादी-कमीशन के कर्णधार जब विनोबाजी से मिलते हैं तो सभी ग्राम-इकाई के कार्यकर्ताओं का बिहारदान में लगाने का आश्वासन देते हैं। आप भी बराबर यही कहकर ग्रामदान के काम में कार्यकर्ताओं को लगाते थे कि खादी ग्रामदान के आधार पर ही खड़ी होगी। गत ५ वर्षों के अथक परिश्रम से हम लोग जिलादान तक पहुँचे हैं। जिस आधार की तलाश में हम लोग थे वह मिला और अब खादी को खड़ा करने की बात हमारे मन में थी ही कि ऐसा फरमान कमीशन की ओर से आया। सारी भाषा और कल्पना समाप्त हुई। मैं आपको सिर्फ झाझा की मिसाल देना चाहता हूँ। अकाल के बाद दो वर्षों में कृषि-विकास और लघु सिंचाई तथा ग्रामदानी गाँवों में ग्रामसभा, ग्रामकोष, और बीघा-कट्ठा का जो काम हुआ है, क्या वह भविष्य की खादी के लिए आधार नहीं बना है ? क्या इस काम की कोई कीमत नहीं मानी जानी चाहिए ?

आपसे प्रार्थना है कि आप इस सम्बन्ध में कमीशन के अधिकारियों का ध्यान पुनर्विचार करने के लिए इस ओर आकर्षित करने की कृपा करें। हमारी राय में खादी-कमीशन को इस पर विचार करके हम कार्यकर्ताओं को काम का मौका देना चाहिए।

खादीग्राम, —पारस
जिला मुंगेर, बिहार

www.vinoba.in

सम्पादकीय

प्रयोगकर्ता कौन ?

हिंसा जितनी ही सूक्ष्म, अहिंसा उतनी ही सौम्य। यह आदर्शवादिता नहीं है, सीधा-सादा नियम है। किसी शक्ति का मुकाबिला उसकी विरोधी शक्ति से ही किया जा सकता है। आज की हिंसा का मुकाबिला उग्र अहिंसा से भी नहीं, बल्कि उत्कट, लेकिन सौम्य, अहिंसा से ही किया जा सकता है। जो हिंसा 'मत' और 'व्यवस्था' का अंग और आधार बन गयी है, वह प्रहार की अहिंसा से कैसे दूर होगी ?

समाज में हिंसा बढ़ रही है। हाँ, बढ़ रही है। लेकिन नक्सालवादियों की हिंसा को हम रोग की तरह बढ़नेवाली हिंसा मानकर टाल नहीं सकते। यह हिंसा यह दावा लेकर सामने आयी है कि गाँव में जो अनीति और अन्याय है कि उसका हिंसक संघर्ष के अलावा दूसरा कोई उपाय है ही नहीं। उसकी नजर में दो ही विकल्प हैं : गरीब पिसता रहे और मुँह से आह भी न निकाले, या मरने-मारने को तैयार हो। अब गरीब को न्याय के लिए प्रतीक्षा करने की सलाह देने का साहस किसमें है ? और उसने बाईस वर्षों में देख लिया कि इस देश में उसीकी बात मानी जाती है जो मरने-मारने को तैयार हो जाता है।

अन्याय और शोषण हिंसा से ही मिलेगा, यह हवा पश्चिम की दुनिया में भी बह रही है और पूरब की दुनिया में भी। नयी पीढ़ी को यह हवा अपनी ओर खींच भी रही है। जो गरीब है, सताया हुआ है, बेकार है, उसके सामने प्रश्न हिंसा-अहिंसा का नहीं है; प्रश्न है अपनी रोटी और इज्जत का। अगर ये चीजें उसे नहीं मिलती हैं तो किसी तरह जीते रहने में उसे आकर्षण क्या है, और अगर उसे खुद नहीं जीना है तो दूसरों को जीने भी क्यों देना है ? यह है गरीब का मनोविज्ञान। हिंसा-अहिंसा की नैतिकता-अनैतिकता के प्रश्न से वह कभी अपने को परीशान नहीं होने देता। इतना ही नहीं, अकसर वह यह भी नहीं सोचता—सोचने की शक्ति वह खो चुका है—कि जो कुछ वह कर रहा है उससे उसका उद्देश्य भी पूरा होगा या नहीं। उसके लिए बस इतना संतोष काफी है कि जो कुछ वह कर सकता था उसने कर लिया।

अहिंसा हिंसा से बड़ी है, उसे कौन नहीं मानता ? जो हिंसा कर रहा है, और दूसरों से करने को कह रहा है, वह भी इस बात को फौरन मान लेता है। उसे अड़चन उस जगह होती है जब वह सहायता नहीं पाता कि अहिंसा से वह काम कैसे बनेगा जिसके लिए वह हिंसा करना चाहता है ? अहिंसा बड़ी तो है, लेकिन क्या उपयोगी भी है ? हिंसा से कम-से-कम तत्काल इतना परिवर्तन तो हो जाता है जो आँखों से दिखाई दे। इतना संतोष कम नहीं है। प्रतिकार का प्रहार, अपने में बहुत बड़ा समाधान है, भले ही परिणाम की दृष्टि से निष्फल हो।

गांधीजी के नेतृत्व में अहिंसा ने यह बीड़ा उठाया कि वह समाज की समस्याएँ हल करेगी, और हिंसा को अनुचित ही नहीं, अनावश्यक भी सिद्ध करेगी। और उन्होंने बहुत हद तक इसे करके दिखाया भी। जब हमने ग्रामदान-आन्दोलन शुरू किया तो हमने भी यही माना था, और यही कहा था, कि ग्रामदान से दमन और शोषण की समस्याएँ हल होंगी। बिहार का राज्यदान हो रहा है। अब समय आ गया है कि क्रान्तिकारी अहिंसा की सारी शक्ति समस्याओं की हल करने में लगे। ग्रामदान अहिंसा की गारंटी नहीं है, लेकिन अहिंसा का दरवाजा ग्रामदान से खुल गया है। शान्ति की शक्ति से समाज का संगठन चल सकता है, यह संभावना ग्रामदान में स्पष्ट है। एक बार शान्ति की शक्ति प्रकट हो जाय तो सौम्य, सौम्यतर अहिंसा के प्रयोग और साधना के लिए रास्ता साफ होता चला जायगा।

अहिंसा में विश्वास रखनेवालों के सामने एक चुनौती है। हमें यह सिद्ध करना होगा कि हिंसक संघर्ष से कुछ परिवर्तन और सुधार भले ही हो जाय, लेकिन समग्र क्रान्ति अहिंसा से ही होगी। अहिंसा से तात्कालिक सुधार भी होगा, और स्थायी क्रान्ति भी। अगर हम इतना नहीं कर सकते तो नीचे की जनता मात्र परिवर्तन और कुछ सुधारों से संतुष्ट हो जायगी, और क्रान्ति अनिश्चित भविष्य के लिए टल जायगी। जनता इस भ्रम में पड़ी रह जायगी कि भले ही और कुछ न हुआ हो, लेकिन उसने अपने सतानेवालों से बदला तो ले ही लिया।

नक्सालवादी ने गाँव में अपना 'बेस' बनाया है। हमने पूरे गाँव को अपना 'बेस' माना है। एक सीधी प्रतिद्वंद्विता है हमारे-उसके बीच। नीयत न उसकी खराब है, न हमारी। मुकाबिला है हिकमत का। जरूरत है हिम्मत की। बड़ी हिंसा का जवाब हल्की हिंसा नहीं है। सम्पूर्ण हिंसा का जवाब है सम्पूर्ण अहिंसा।

राज्यदान के बाद का काम अहिंसा के नये प्रयोग और अभ्यास का है। प्रयोगकर्ता कौन बनेगा ?•

नये प्रकाशन

मनोजगत् की सैर

लेखक : मनमोहन चौधरी

सर्व सेवा संघ के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री मनमोहन चौधरी की मनोवैज्ञानिक सूझबूझ और कलात्मक प्रतिभा का अद्भुत समन्वय : समाजशास्त्र, मनोविज्ञान का अध्ययन करनेवालों के लिए ही नहीं, आन्दोलन में लगे कार्यकर्ताओं के लिए भी पठनीय। मूल्य : ६ रु०।

लोकतंत्र : विकास और भविष्य

लेखक : आचार्य दादा धर्माधिकारी

बिहार के राज्यस्तरीय कार्यकर्ता-शिविर राँची में प्रस्तुत लोकतंत्र के ऐतिहासिक विकास का संदर्भ और भविष्य की सम्भावनाओं का शोधपूर्ण अध्ययन। मूल्य : २ रु०।

सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-१

www.vinoba.in

मेरा 'भी वाद'

विनोबा

मैं यहाँ कोई व्याख्यान देने के खयाल से नहीं आया हूँ, बल्कि आप लोगों का आशीर्वाद माँगने आया हूँ। और अगर आप कर सकते हैं, तो सहयोग भी। हमारी चौदह साल की पदयात्रा में हमारे तेरह-चौदह हजार व्याख्यान हो गये हैं। इसके अलावा चलते समय कई चर्चाएँ भी। उसको हमने नाम दिया था—'वार्किंग सेमिनार'! इस तरह विचारों का प्रचार वाणी से जितना हो सकता था, किया गया। अब पाँव में पदयात्रा करने की शक्ति रही नहीं, चित्त में तो है, तो मोटर से जाता हूँ।

केरल के चर्च का स्मरणीय पत्रक

पदयात्रा में मैं सारे भारत भर में घूमा। भारत-यात्रा में, जहाँ-जहाँ क्रिश्चन कम्यूनिटी है, वहाँ हर जगह जाने का मौका मुझे मिला है। उन लोगों ने बहुत प्रेमपूर्वक आशीर्वाद दिया और हमारा स्वागत किया। केरल में चार मुख्य चर्च हैं। उन सब चर्चवालों ने एक सम्मिलित पत्रक निकाला और बाबा के काम को 'सपोर्ट' किया। उन्होंने जिन शब्दों में 'सपोर्ट' किया, वह कभी भूला नहीं जा सकता। उन्होंने उस पत्रक में अपील की थी कि बाबा जो काम कर रहा है, वह ईसा मसीह की राह में है। ईसा मसीह ने जो राह दिखाई, उसी पर चलने की बाबा की कोशिश है। और यह काम क्रिश्चन स्पिरिट में हो रहा है। इसलिए सब क्रिश्चनों का फर्ज है कि वे इसको मदद करें। यह जो शब्द इस्तेमाल किया गया कि यह आन्दोलन भगवान ईसा मसीह की राह पर चल रहा है, वह बहुत बड़ी बात है। इसके बाद हम असम प्रदेश में गये थे। वहाँ भी क्रिश्चन कम्यूनिटी से मिलने का मौका मिला। वहाँ उन लोगों ने कहा कि आपका जो आदेश है, उसके अनुसार काम करने की कोशिश हम करेंगे।

ईसा की सिखावन का सार

ईसा मसीह का जो कथन है, उस सबका सार हमने तीन वचनों में निकाला:

(१) लव दाय नेबर एज दायसेल्फ

(२) लव दाइन एनिमी

(३) यी लव वन-अनादर एज आई हैड लव्ड यू।

मैं समझता हूँ कि उनकी 'टीचिंग' का सार इन तीन वचनों में है।

पहला वाक्य—"लव दाय नेबर एज दायसेल्फ।" 'लव दाय नेबर' इतना ही वे कहते, तो वह मामूली बात थी। आप अपने पड़ोसी से प्यार करेंगे, तो वह भी आपसे करेगा। आप उसको गालियाँ देंगे, तो वह भी आपको गालियाँ देगा। यह तो 'सेल्फ इंटरेस्ट' की बात है। है स्वार्थ ही—उदात्त स्वार्थ है, पर स्वार्थ ही। वह कोई खास बात नहीं थी, अगर इतना ही कहा होता कि 'लव दाय नेबर', लेकिन उन्होंने जोड़ दिया—'एज दायसेल्फ'। यह बात बहुत कठिन और गहरी है। हमारा अपने पर जितना प्यार है, उतना पड़ोसी पर करना चाहिए। जरा सोचें, हम लोग अपने पर कितना प्यार करते हैं! इस देह के लिए हमने क्या-क्या नहीं किया? उसको खिलाते हैं, पिलाते हैं, नहलाते हैं, निद्रा दिलाते हैं, स्नान कराते हैं—कितना प्यार है अपने पर! उतना ही प्यार पड़ोसी पर करो।

यह बात एकदम हमको वेदांत में ले जाती है। जो आत्मा मुझमें है, वही आत्मा दूसरे में है। इस वास्ते हम सब एक-दूसरे के हकदार हो जाते हैं। इसको मैंने नाम दिया—'अप्लाइड वेदांत'। आचार्य शंकर आदि महापुरुषों ने हिन्दुस्तान में यह सिखाया कि जो आत्मा आपमें है, वही दूसरे में है, इस वास्ते सब पर समान प्रेम करना चाहिए।

दूसरा वाक्य है—'लव दाइन एनिमी'। इससे तो शस्त्र हाथ में आ गया दुनिया को जीतने का। अभी दुनिया को जीतने की कोशिश अमेरिका कर रहा है, रूस भी कर रहा है। दोनों राष्ट्र क्रिश्चन राष्ट्र हैं। एक जमाने में इंग्लैंड की भी यह कोशिश थी। ये सारे क्रिश्चन राष्ट्र हैं। लेकिन क्रिश्चन लोग जितने आपस-आपस में लड़े, और जितना खून क्रिस्ती लोगों ने बहाया, मैं मानता हूँ, दूसरे किसी कौम ने बहाया नहीं। मैंने एक अंग्रेजी किताब पढ़ी थी—'दुनिया की भयंकर लड़ाइयाँ।' उनमें दो-चार लड़ाइयाँ एशिया की थीं, बाकी तमाम यूरोप की थीं, जिसमें क्रिश्चन राष्ट्र शामिल थे। जर्मनी और इंग्लैंड, दोनों राष्ट्रों के लोग चर्च में बैठकर परमात्मा से प्रार्थना करते थे कि हे प्रभु, हमारे राष्ट्र की जय हो! जर्मनी के लोग कहते थे कि जर्मनी की जय हो, इंग्लैंड के लोग कहते थे कि इंग्लैंड की जय हो! बेचारा भगवान घबरा गया होगा कि अब क्या किया जाय! एक को जय देंगे तो उसका अर्थ होगा कि दूसरे की प्रार्थना नहीं सुनी। जर्मनी के हवाई जहाजों ने लंदन पर आक्रमण करके हजारों मकान खतम किये और इंग्लैण्ड के हवाई जहाजों ने बर्लिन पर आक्रमण करके उसको खतम किया। जर्मनी के लोगों ने फिर से जर्मनी को खड़ा किया है वे, पराक्रमी लोग हैं। और जब लंदन और बर्लिन बन रहे थे, तब उनको क्या-क्या चिंता थी? लंदन में लाइब्रेरी थी, जिसमें दुनिया की हर भाषा के ग्रन्थ थे। जर्मनी ने भी ऐसा ही किया था। और फिर जब हवाई जहाज से बमवर्षा चलायी, तब नीचे क्या जल रहा, इसकी परवाह नहीं की। और दोनों थे क्रिस्ती राष्ट्र।

प्रेम का अभिक्रम

'लार्ड-लार्ड' कहने से भक्ति सिद्ध नहीं होती। जो परमात्मा की सेवा करता है, उसके शब्द पर अमल करता है, उसकी वह भक्ति है। केवल 'लार्ड-लार्ड' कहनेवाले बहुत हुए दुनिया में। यह ईसा मसीह ने स्वयं कह दिया है। तो 'लव दाईन एनिमी', दुनिया में कितने कर सकेंगे? दूसरा प्रेम करेगा, तो हम उससे प्रेम करेंगे, वह मारेगा तो हम उसको मारेंगे, वह मत्सर करेगा, तो हम भी उसका मत्सर करेंगे—इसमें अभिक्रम सामनेवाले के हाथ में है, मेरे हाथ में नहीं। 'लव दाय एनिमी' में अभिक्रम मेरे हाथ में है। मैं तो सबके साथ प्रेम का व्यवहार करूँगा, आप चाहे जो करें—मारें, मत्सर करें। इस प्रकार हम दुनिया को प्रेम से जीत सकते हैं। यही गौतम बुद्ध ने कहा था—"नहि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं"—वैर से वैर कभी शमन

www.vinoba.in

नहीं होता। 'अक्कोधेन जिने कोधं'—क्रोध को अक्रोध से जीतो।

यही महात्मा गांधी ने कहा। और मैं मानता हूँ कि गांधीजी ने सत्याग्रह वगैरह जो कुछ किया, वह 'लव दाय एनिमी' का एप्लिकेशन था। और हमने देखा कि महात्मा गांधी ने हमेशा कहा कि अंग्रेज का द्वेष हम नहीं करते, इंग्लिश राज का द्वेष करते हैं। दुर्जन का द्वेष नहीं करते, दुर्जनता का द्वेष करते हैं। यह 'एनलिसिस' आखिर तक उन्होंने सिद्ध किया। उनका इंग्लैण्ड पर उतना ही प्रेम था, जितना भारत पर था। इतनी बड़ी चीज—सत्याग्रह-शक्ति उस वाक्य में आती है।

तीसरा वाक्य ईसा ने अपने अनुयायियों को आखिर में कहा है। जाने का मौका आया, तब कहा है—मैं नहीं जाऊँगा तो वह नहीं आयेगा, वह आनेवाला है। जितना मैं नहीं दे सका, वह आपको शिक्षा देगा, उसकी तैयारी के लिए जाना होगा। लेकिन तुम एक-दूसरे पर प्यार करो। यह तो कोई बड़ी बात नहीं। अपने अनुयायियों से सभी सम्प्रदायवाले कहते हैं कि आपस-आपस में प्यार करो। लेकिन आगे जोड़ दिया—'ऐज आय लव्ड यू।' जिस प्रकार मैंने अपना सर्वस्व त्याग दिया, 'सेक्रिफाइस' किया तुम्हारे लिए, वैसा तुम एक-दूसरे के लिए करो। अपने मित्रों के लिए समर्पण करें, इससे अधिक प्रेम क्या किया जा सकता है इस सृष्टि में ? तो वह तुम करो, ऐसा संदेश देकर वह महापुरुष चला गया।

यह तो मैंने आपके सामने जीसस क्राइस्ट की 'टीचिंग्स' को, जिस प्रकार मैं समझा हूँ और जिस प्रकार अमल करने की कोशिश कर रहा हूँ आपके सामने रखा। टूटा-फूटा अमल है मेरा, लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि उन्होंने जो रास्ता दिखाया है, उसी रास्ते पर जाने का यह प्रयत्न है।

ऐसे तो आप लोग जिनको क्रिश्चन समझते होंगे, उस कौम में मेरी गिनती आप उदारता से करेंगे, तो करेंगे। लेकिन साम्प्रदायिकतापूर्वक तो नहीं करेंगे। कहेंगे, आखिर यह हिन्दू है। लेकिन ईसा मसीह ने ऐसा भेद नहीं किया है। उन्होंने कहा है—'आई हैव अदर मेन्शन्स आल्सो,' इस वास्ते ईसा मसीह का एक मकान है, जिसको आप क्रिश्चन कहते हैं, एक मकान है, जिसको आप वेदांत कहते हैं; एक है, जिसको आप इस्लाम कहते हैं; एक है, जिसको आप बौद्ध कहते हैं। ये सारे उनके मकान हैं। और ईसा मसीह कोई 'परसनल' तो थे नहीं 'ही इज द्वेडे, दूमारो एण्ड फारएवर।' हमेशा के लिए हैं। लेकिन मैं दावा करना चाहता हूँ कि मैं क्रिश्चन भी हूँ। यह 'भी' आप समझेंगे, तो बहुत बड़ा लाभ होगा दुनिया को। इसको मैंने नाम दिया है 'भी वाद'। मैं क्रिश्चन भी हूँ, हिन्दू भी हूँ, मुसलमान भी हूँ और बौद्ध भी हूँ। 'भी हूँ।' हम 'इनक्ल्यूजीव' हो, 'एक्सक्ल्यूजीव' नहीं। मैंने एक भाई से पूछा था कि क्या भिन्न-भिन्न चर्चवाले क्रिश्चन लोग एक होते है ? मैं मानता हूँ प्रार्थना के लिए भी एक नहीं होते। वे कहने लगे कि 'आजकल होते हैं।' तो मैंने कहा, बड़ी कृपा है आपकी भगवान ईसा मसीह पर।

मत अनेक : चित्त एक

मतभेद तो होते ही हैं धर्म में। हिन्दू धर्म में, भी कहाँ नहीं हैं ? षड् दर्शन, सांख्य, योग, वेदांत, मीमांसा, अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत। तत्त्व-विचार में भेद होते हैं। लेकिन चित्त एक हो सकता है। विचारों में भेद होता है तो सबका 'सिथेसिस' करना चाहिए; सबके अनुभवों का लाभ लेना चाहिए। और यह नहीं मानना चाहिए कि भगवान का अनुभव एकमेव हमको ही है। इस्लाम मानता है कि—"ला नु फर्किकु"—हम फरक नहीं करते, "बैन अह्दिम्मिर्रुसुलिही"—जितने रसूल हैं। भगवान के भेजे हुए हैं—रामकृष्ण, गौतम बुद्ध, महावीर से लेकर जीसस क्राइस्ट, इब्राहीम, मुहम्मद—इसमें हम भेद नहीं करते और हम सब रसूलों में मानते हैं। मेरे प्यारे भाइयो ! कोई भी सच्चा धर्म 'एक्सक्ल्यूजिव' नहीं हो सकता। वह 'इनक्ल्यूजिव' होगा—तुम भी मेरे हो, तुम भी मेरे हो।

सर्वधर्म-समन्वय की कामना

आप शायद जानते हों कि पच्चीस-तीस साल लगातार जीसस क्राईस्ट का अध्ययन करके उनकी 'टीचिंग्स' के सार की एक छोटी-सी किताब मैंने तैयार की है। उसके शीर्षक संस्कृत में दिये हैं। कुरान शरीफ का इसी प्रकार अध्ययन करके उसका भी सार निकालकर 'कुरान-सार' नाम से प्रकाशित किया है। बौद्धों के 'धम्मपद' का भी अध्ययन करके उसको 'रिअरेंज' किया है। गीता पर भी एक छोटी-सी कमेंटरी लिखी है। 'गीता-प्रवचन' के नाम से वह हिन्दुस्तान की सब भाषाओं में प्रकाशित हो चुकी है। सिक्खों का ग्रंथ 'जपुजी' पर भी मैंने कुछ लिखा है।

मैं कहना चाहता हूँ कि बाबा सब धर्मों का समन्वय चाहता है। सब धर्मवालों का हृदय एक हो और सब मिलकर बुराई की मुखालिफत करें। आज स्थिति यह है कि और कई दूसरी बातों में तो सब इकट्ठा बैठकर बात कर लेंगे, पर प्रार्थना के समय, भगवान का नाम लेने के समय सब दूर-दूर भाग जायेंगे—मानो, लाठी-चार्ज हुआ हो ! यानी भगवान जो सबको जोड़नेवाला था वही सबको तोड़नेवाला साबित हुआ। इसलिए मैंने नुक्ता निकाला है मौन प्रार्थना का। उसमें सब इकट्ठा प्रार्थना कर सकते हैं। आज अपने-अपने अभिमान के कारण सतत दिलों को तोड़ने का काम धर्मों ने किया है। और आज समन्वय का, जोड़ने का काम नहीं करेंगे, तो दुनिया को खतरा है। आज के आणविक अस्त्र दुनिया को आह्वान दे रहे हैं कि 'तुम जल्द-से-जल्द हृदय से एक हो जाओ, अन्यथा खतम हो जाओ।' इसलिए यह बहुत जरूरी है कि हम जुड़ जायें।

आप जानते हैं कि मैं ग्रामदान के लिए घूम रहा हूँ और सारा बिहार प्रांत ग्रामदान में आ जाय यह मेरी कोशिश है। मैं उसके लिए आपका आशीर्वाद चाहता हूँ और बन सके तो सहयोग भी, ताकि यह राँची जिला जल्द-से-जल्द ग्रामदान में आ जाय। जहाँ क्रिश्चैनिटी है, वहाँ तो सारा गाँव एक होना चाहिए। और जहाँ आदिवासी हैं, उनकी ट्रैडिशन भी वैसी ही है। इस प्रकार से देखा जाय, तो यह जिला ग्रामदान के लिए अत्यन्त अनुकूल है।

[ईसाई-पादरियों के बीच

राँची, बिहार : १२-४-'६९]

ग्रामदान-कानून अविश्वास पर आधारित न हो

सन् '५१ में विनोबा अपनी एकांत-साधना की समाधि त्यागकर पवनार आश्रम से समाज की ओर अग्रसर हुए। बाबा के पास मुहब्बत के पैगाम के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। मुहब्बत के पैगाम में से करुणा की धारा 'भूदान' के रूप में निकल पड़ी। समाज ने प्रेम और करुणा के इस सत्य का 'भूदान' के रूप में दर्शन किया। आज जब हम आन्दोलन का मूल्यांकन करते हैं तो हम यही गणित रखते हैं कि कितनी जमीन भूमिहीनों में बँटी। इस आन्दोलन को भी समाज इसी संकुचित अर्थ में जानने लगा।

आन्दोलन की जबरदस्त भूल

तृषित और त्रस्त, भयाक्रान्त और शंका-शील समाज इस प्रेम-प्रसाद को ग्रहण कर पुनः वापस दौड़ गया सत्ता की छाया में, तलवार की हिफाजत पाने। कानून के आश्रय में जाने से आन्दोलन की आत्मा निकल गयी। ऐसा करने में क्या यह माना गया कि जितनी करुणा अबतक हो चुकी वह अब आगे संभव नहीं? यदि हम यह मानकर चलें तो क्या कानून समाज की क्रूरता से हमारी हिफाजत कर सकेगा? कितने भूदान-किसान आते हैं, रोते-बिलखते हैं, कहते हैं कि बाबू, हमें नहीं चाहिए भूदान की जमीन। वही जेल, मुकदमा, मारपीट, अत्याचार! कचहरी की डिग्री के कागज में दीमक लग रही है।

यदि करुणा की गंगा बहती रहती तो किसान दान की भूमि के साथ हल, बैल, बीज, पानी—सब कुछ समाज से पाता। भूदान-आन्दोलन के इतिहास में समाज पर शंका करके कानून का सहारा लेना एक जबर्दस्त भूल मानी जायेगी।

यदि 'भूदान' गाँव में ग्राम-परिवार के लिए 'जामन' के रूप में होता तो गाँव भूदान से ग्रामदान की ओर बढ़ जाता, पर ग्रामदान का तूफान अलग से उठाना पड़ा और आश्चर्य तो तब होता है जब आये दिन यह सूचना मिलती है कि अमुक क्षेत्र में भूदान की समस्या के कारण ग्रामदान मिलने में कठिनाई हो रही है। लेकिन इससे भी आश्चर्य तब होता है जब इस ग्रामदान को कानूनी जामा पहनाने की बेचैनी देखता हूँ।

भूदान के कानून को पढ़कर एक कवि की तपस्या की मिसास याद आती है। कवि ने तपस्या प्रारम्भ की कि 'कवि के स्वप्न समान' नायिका का उसे दर्शन हो। अन्ततोगत्वा भगवान को कवि की माँग पूरी करनी पड़ी। जब नायिका सामने आयी, तो कवि त्राहि-त्राहि करने लगे। कमर वक्षस्थल का बोझ नहीं संभाल पा रही है। कोमल अधर से खून की धारा बह रही है। कवि ने पुनः ईश्वर का स्तवन कर उस नायिका को वापस भिजवा दिया। हमारे ग्रामदान-कानून की कथा भी इससे भिन्न नहीं है। आन्दोलन में लगे कानून के विशेषज्ञों ने कानून के कटघरे में ग्रामदान के विचार को बाँधकर विधेयक के लिए मसविदा दिया। वही विधेयक जब अधिनियम के रूप में सामने आया तो इतना भयानक मालूम होता है कि सात सौ वर्ष तक यह ग्रामदान की पुष्टि का कार्य रोक सकता है!

अब एक लाख से अधिक ग्रामदान हो गये। एक राज्यदान भी शीघ्र ही पूरा होगा। इधर हमने कानून के प्रयोग का नमूना भी हासिल कर लिया। अबतक के अनुभव से लाभ लेकर यदि हम कानून को शीघ्र नहीं सुधार लेंगे तो शंकर की इस जटा से ग्रामदान की गंगा आगे जानेवाली नहीं है। लेकिन कानून का मसविदा गढ़ते समय यदि हमारे मन में समाज की श्रद्धा के प्रति रंच मात्र भी शंका रही तथा उसके लिए कानून की कील लगाने का प्रयास किया तो भूदान का विचार निष्प्राण हो जायगा, पुरुषार्थ कुंठित होगा तथा कानून की कटार ही सामने बचेगी।

असली समस्या

वर्तमान कानून में भूमि का बीघा-कट्ठा दान, बेजमीन के लिए घोषणा के समय ही समर्पणपत्र में निर्दिष्ट करने की व्यवस्था कानून को पूरा लीप-पोत डालती है। 'ग्रामदान' का अर्थ 'भूक्रान्ति' मानने के भ्रम में पड़े मन को इस प्रस्तावना से निराशा होगी। वे कहेंगे कि ठोस निष्पत्ति तो बीघे-कट्ठे की थी, इसे भी निकाल दिया तो अब ग्रामदान में बचा क्या? ऐसे विचारकों की सहानुभूति के लिए थोड़ी दूर तक मैं उनके साथ सोचता हूँ। क्या हमारे देश की समस्या मात्र भूवितरण की समस्या है या सारी समस्याओं के केन्द्र में मात्र भूमि है? यदि भूमिवितरण की समस्या है तो भूवितरण की मर्यादा क्या होगी, जब कि प्रति व्यक्ति ३० डिसमिल जोत की जमीन उपलब्ध है? साम्यवादी देशों के प्रयोगों के बावजूद क्या राष्ट्रीयकरण का हौसला बचा है? हमारे सामने तो बस ग्रामभावना ही एकमात्र विकल्प है। ग्राम-भावना ग्रामस्वामित्व की अनुचरी बनेगी या ग्राम-भावना स्वयं स्वामिनी बनेगी? स्पष्ट है कि सबसे आगे रखना होगा ग्रामभावना को, और इस ग्राम-भावना की शुरुआत करनी होगी परस्पर-विश्वास और श्रद्धा से।

आज के कानून का अन्तरदर्शन

आज के कानून में अपने राजस्व-गाँव की जमीन का बीघा-कट्ठा समर्पण-पत्र में भरकर ही पुष्टि के लिए दाखिल करने की व्यवस्था है। इसकी परीक्षा के पहले इसके स्वरूप का सजीव दर्शन कर लें। शब्द है—'गाँव की जमीन का ५ प्रतिशत भूमिहीन के लिए', लेकिन जब इसे कानून में बाँधने लगे तो मुश्किल से १ प्रतिशत जमीन हाथ लगी। किसी गाँव में उस गाँववाले की औसत जमीन ६० प्रतिशत होती है। शेष पड़ोसी या दूर के गाँव के लोगों में निहित होती है। इस ६० प्रतिशत में से ५१ प्रतिशत भूमिवालों के शरीक होने पर ग्रामदान मान लेते हैं। कहीं-कहीं ज्यादा भूमि भी आती है। औसत ५५ प्रतिशत ही मानें तो कुल गाँव की अधिकतम ३३ प्रतिशत जमीन के मालकियत विसर्जन की घोषणा होती है। इस ३३ प्रतिशत में कम-से-कम २० प्रतिशत जमीन वैसे अल्प-भूमिवान की है, जिसका बीघा-कट्ठा निकालकर दूसरे गरीब को देना अव्यावहारिक होगा। इस ३३ प्रतिशत में ही गाँव के ७५ प्रतिशत लोगों का निवास एवं ग्राम व्यवहार आदि की भूमि है। फिर कुछ लोगों ने पहले ही भूदान में भी जमीन दी होगी। सब मिलाकर २० प्रतिशत जमीन से अधिक में से बीघा-कट्ठा निकालने की सम्भावना गणित से भी नहीं आती। (क्रमशः)

—निर्मलचन्द्र

www.vinoba.in

तत्त्वज्ञान

भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरू को दी गयी फांसी तथा गणेश शंकर विद्यार्थी के आत्म-बलिदान के प्रसंगों से क्षुब्ध कराची-कांग्रेस-अधिवेशन के लोगों को सम्बोधित करते हुए २६ मार्च १९३१ को गांधीजी ने कहा था :—

"जो तरुण यह ईमानदारी से समझते हैं कि मैं हिन्दुस्तान का नुकसान कर रहा हूँ, उन्हें अधिकार है कि वे यह बात संसार के सामने चिल्ला-चिल्लाकर कहें। पर तलवार के तत्त्वज्ञान को हमेशा के लिए तलाक दे देने के कारण मेरे पास अब केवल प्रेम का ही प्याला बचा है, जो मैं सबको दे रहा हूं। अपने तरुण मित्रों के सामने भी अब मैं यही प्याला पकड़े हुए हूँ....।"

उसके बाद का इतिहास साक्षी है कि देश ने तलवार के तत्त्वज्ञान को तलाक देनेवाले गांधी का साथ दिया। साम्राज्य-वाद की नींव हिली, भारत में लोकतंत्र की नींव पड़ी और संसार को मुक्ति का एक नया रास्ता मिला।

संसार आज बन्दूक की नाली के तत्त्वज्ञान से और अधिक त्रस्त हुआ है। विनोबा संसार को वही प्रेम का प्याला पिलाकर बन्दूक के तत्त्वज्ञान को तलाक दिलाना चाहता है और देश में सच्चे स्वराज्य की स्थापना के लिए उसने नया रास्ता बताया है।

क्या हम वक्त को पहचानेंगे और महान कार्य में वक्त पर योग देंगे ?

गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी-जन्म-शताब्दी-समिति)
डूंकलिया भवन, कुन्दीगरों का भैरू, जयपुर-३ राजस्थान द्वारा प्रसारित।

www.vinoba.in

ग्रामदान के समाचार

उत्तरप्रदेश

वाराणसी, २४ अप्रैल। अप्रैल के अन्त तक उत्तरप्रदेश में ४ नये प्रखण्डदान और ९९४ ग्रामदान हुए, जिससे प्रदेश में प्राप्त ग्रामदानों की संख्या ३० अप्रैल को १६,१८७ हो गयी और ९० प्रखण्डदान हो गये।"—यह सूचना उत्तरप्रदेश ग्रामदान-प्राप्ति समिति के संयोजक श्री कपिल भाई ने एक भेंट में हमारे प्रतिनिधि को दी। उन्होंने अत्यन्त उल्लास के साथ कार्यकर्ताओं के उत्साह की चर्चा करते हुए कहा कि मई में मेरठ, बुलन्दशहर और सहारनपुर में अभियान चले हैं। बड़ौत (मेरठ) प्रखण्ड में १० हजार की आबादी से अधिक के गाँव ग्रामदान में शामिल हुए हैं। देवरिया जिले में सुकरौली और गोरखपुर जिले में गोलाबाजार प्रखण्डों में अभियान चलाये गये। उन्नाव जिले में अभी तक सिर्फ ५ ग्रामदान पुराने थे, अब वहाँ तहसील-स्तर का अभियान चलाया जा रहा है। आगरा में एत्मादपुर में ग्रामदान-अभियान शुरू किया गया है।

आपने बताया कि फर्रुखाबाद में जिलादान के लिए प्रयास चल रहे हैं। जिला परिषद् के १०० शिक्षक और २०० खादी-कार्यकर्ता ग्रामदान-प्राप्ति में लगे हैं। इस जिलादान अभियान का मार्गदर्शन करने के लिए श्री धीरेन्द्र भाई पहुँच गये हैं।

लखनऊ में २०-२१ मई को प्रदेश भर के जिला परिषद् के अध्यक्षों का महत्त्वपूर्ण सम्मेलन हुआ, जिसमें प्रदेशीय पंचायत परिषद् के अध्यक्ष श्री कालीचरण टण्डन, मुख्य मंत्री श्री चन्द्रभानु गुप्त, नियोजन एवं पंचायतराज मंत्री श्री नारायणदत्त तिवारी तथा अ० भा० पंचायत परिषद् के अध्यक्ष श्री एस० के० डे उपस्थित थे।

उ० प्र० ग्रामदान-प्राप्ति समिति के संयोजक श्री कपिल भाई की स्थापना के महत्त्व पर प्रकाश डाला। आपने सभी जिला परिषद् के अध्यक्षों का सहयोग "प्रान्तदान" के संकल्प-पूर्ति के लिए प्राप्त करने का निवेदन किया। इस सम्मेलन में आये हुए अध्यक्षों और अधिकारियों ने सहर्ष मदद करने का आश्वासन दिया है। इस प्रकार का सम्मेलन और उसमें ग्रामदान-आन्दोलन को व्यापक समर्थन मिलने का यह पहला ही अवसर है।

प्राकृतिक चिकित्सा-प्रशिक्षण

प्राकृतिक चिकित्सालय, बापूनगर, जयपुर–४ (राजस्थान) में १ जुलाई '६९ से एक वर्षीय प्राकृतिक चिकित्सा-प्रशिक्षण सत्र आरम्भ हो रहा है। इसमें १८ से ४० वर्ष तक की आयु के मैट्रिक उत्तीर्ण अथवा समकक्ष शैक्षणिक योग्यतावाले स्त्री-पुरुषों को प्रवेश दिया जायेगा। प्रशिक्षण-काल में ४० रु० मासिक छात्रवृत्ति दी जायगी। निवास-व्यवस्था निःशुल्क है। सेवाभावी रचनात्मक कार्यकर्ताओं एवं सज्जनों को प्राथमिकता एवं आयु में छूट भी दी जा सकेगी। प्रवेश के आवेदन-पत्र एक रुपया शुल्क अग्रिम भेजकर मँगा लें। आवेदन-पत्र पहुँचने की अन्तिम तिथि १५ जून ६९ है।

—व्यवस्थापक, प्राकृतिक चिकित्सालय

स्वास्थ्योपयोगी प्राकृतिक चिकित्सा की पुस्तकें

		लेखक	मूल्य
कुदरती उपचार		महात्मा गांधी	०-८०
आरोग्य की कुंजी		,, ,,	०-४४
रामनाम		,, ,,	०-५०
स्वस्थ रहना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है	द्वितीय संस्करण	धर्मचन्द सरावगी	२-००
सरल योगासन	,, ,,	,, ,,	२-५०
यह कलकत्ता है	,, ,,	,, ,,	२-००
तन्दुरुस्त रहने के उपाय	प्रथम संस्करण	,, ,,	१-२५
स्वस्थ रहना सीखें	,, ,,	,, ,,	२-००
घरेलू प्राकृतिक चिकित्सा	,, ,,	,, ,,	०-७५
पचास साल बाद	,, ,,	,, ,,	२-००
उपवास से जीवन-रक्षा		अनुवादक ,, ,,	३-००
रोग से रोग-निवारण		स्वामी शिवानन्द	२०-००
How to live 365 day a year		John	22-05
Everybody guide to Nature cure		Benjamin	24 30
Fasting can save your life		Shelton	7-00
उपवास		शरण प्रसाद	१-२५
प्राकृतिक चिकित्सा-विधि		,, ,,	२-५०
पाचनतंत्र के रोगों की चिकित्सा		,, ,,	२-००
आहार और पोषण		झवेरभाई पटेल	१-५०
वनौषधि-शतक		रामनाथ वैद्य	२-५०

इन पुस्तकों के अतिरिक्त देशी-विदेशी लेखकों की भी अनेक पुस्तकें उपलब्ध हैं।

विशेष जानकारी के लिए सूचीपत्र मँगाइए।

एक्मे, ८।१, एसप्लानेड ईस्ट, कलकत्ता–१

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

www.vinoba.in

इस अंक में

सरकार जनता की, दल की नहीं
असफल ग्रामदानी गाँव ?
जिलादान मानी क्या ?
आजाद गाँवों का आजाद भारत
सच्चा अर्थशास्त्र
प्रीत की नयी रीत
वैभव की फैलती दुनिया और टूटता-बिखरता आदमी

२ जून, '६९
वर्ष ३, अंक २०] [१८ पैसे

अब किसे भेजें ? : ४

सरकार जनता की, दल की नहीं

प्रश्न : आपने कहा था कि अब चुनाव की लड़ाई दल और जनता के बीच होगी। और, आपने यह भी बताया था कि किस तरह ग्रामदानी गाँवों के लोगों को अपनी ग्रामसभाएँ बनानी चाहिए, और उन ग्रामसभाओं के आधार पर निर्वाचन-मंडल'। ये निर्वाचन-मंडल सर्वसम्मति से अपने उम्मीदवार तय करेंगे। इतनी बात तो समझ में आ गयी, लेकिन यह बताइए कि बाकी काम कैसे होंगे ?

उत्तर : जैसे चुनाव में होते हैं। निर्वाचन-मंडल का उम्मीदवार दूसरे उम्मीदवारों की ही तरह नामजदगी का पर्चा दाखिल करेगा, और चुनाव में शरीक होगा। दलों के, या निर्दलीय, उम्मीदवार भी रहेंगे ही। आखिर, किसीको उम्मीदवार बनने से मना तो किया नहीं जा सकता! लेकिन एक बात होनी चाहिए। वह यह है कि ग्रामदान के उम्मीदवार के लिए गाँव-गाँव, घर-घर घूमकर वोट माँगने की नौबत नहीं आनी चाहिए। अगर यही करना पड़ा तो फिर ग्रामदान क्या रहा ?

प्रश्न : बिना घूमे और कन्वेसिंग किये भी काम चल सकता है ?

उत्तर : क्यों नहीं ? आप यह सोचिए कि जो ग्रामदान का उम्मीदवार है वह निर्वाचन-मंडल द्वारा उम्मीदवार बनाया गया है। वह अपने-आप उम्मीदवार नहीं हो गया है, और न तो किसी दल ने, दिल्ली, लखनऊ या पटना में बैठकर उम्मीदवार बना दिया है। यह निर्वाचन-मंडल क्या है ? ग्रामसभाओं के भेजे हुए २५० प्रतिनिधियों से निर्वाचन-मंडल बना है। और ये प्रतिनिधि किसके हैं ? निर्वाचन-क्षेत्र भर में फैली हुई ग्रामसभाओं के, जिनमें क्षेत्र के वोटर रहते हैं। हो सकता है कि कुछ ऐसे गाँव रह गये हों जो अभी तक ग्रामदान में शरीक न हुए हों। उनकी संख्या बहुत कम होगी। आप ही सोचिए कि जिस उम्मीदवार के पीछे इतने अधिक लोगों की शक्ति हो, क्या उसे भी कन्वेसिंग करने की जरूरत पड़नी चाहिए ? होना तो यह चाहिए कि निर्वाचन-मंडल द्वारा उम्मीदवार घोषित हो जाने के बाद उस क्षेत्र से दूसरा कोई व्यक्ति खड़ा होने की हिम्मत न करे। बल्कि मैं तो यह कहूँगा कि अगर ग्रामदानी उम्मीदवार को कन्वेसिंग करनी पड़ी तो उसके जीतने में भी शुबहा रहेगा।

प्रचार नहीं, सर्वसम्मत सहकार

www.vinoba.in

प्रश्न : बात आप ठीक कहते हैं। जब हमने अपना उम्मीदवार खड़ा किया तो उसे जिताने की चिंता हमें होनी चाहिए, न कि जीतने की चिंता उसे। और, मैं ऐसा सोचता हूँ कि अगर ग्रामसभाएँ संगठित हो गयीं, और निर्वाचन-मंडल ने अपना काम कर लिया तो जो आप चाहते हैं वही होगा। अब यह बताइए कि चुनाव तो हो जायगा, लेकिन सरकार कैसे बनेगी ?

उत्तर : कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। अगर गाँव में शक्ति होगी तो ऊपर के सब काम आसान होते चले जायंगे। हर चीज की कुंजी आपके हाथ में है। आज ऊपर की शक्ति से गाँव चल रहे हैं। अब गाँव की शक्ति से ऊपर के काम चलेंगे। गाँव एक हो जायँ, संगठित हो जायँ, और अपनी भीतरी व्यवस्था अपने बल पर संभाल लें, तो आप देखेंगे कि देखते-देखते सारा ढाँचा बदल जायगा, और आज जो कठिनाइयाँ दिखाई देती हैं वे सब दूर हो जायंगी।

प्रश्न : बताइए, सरकार कैसे बनेगी ?

उत्तर : मिसाल के लिए बिहार को लीजिए। उत्तर प्रदेश या किसी भी दूसरे राज्य को भी ले सकते हैं। जो बात एक जगह वही सब जगह। बिहार विधान-सभा में ३१८ सदस्य होते हैं। मान लीजिए कि अगले चुनाव में ३१८ में २५० या इससे अधिक ग्रामदानी सदस्य विधान-सभा में पहुँच जाते हैं। यों तो होना यह चाहिए कि जब पूरे बिहार का राज्यदान हो गया तो दो-चार उम्मीदवार भी गैर-ग्रामदानी क्यों चुने जायँ ! लेकिन, मान लीजिए कि राज्यदान के बाद पहले चुनाव में ऐसा नहीं होता और केवल २५० ही ग्रामदानी सदस्य विधान-सभा में पहुँचते हैं। आज की पद्धति में इन २५० की सरकार बननी चाहिए। बाकी सदस्यों को विरोधी दल में रहना चाहिए। यह सरकारी दल, विरोधी दल की जो पद्धति है हम उसे जड़ से गलत मानते हैं। वह झगड़े की जड़ है। ग्रामदान की पद्धति में होगा यह कि प्रबल बहुमत में होते हुए भी ग्रामदान के २५० सदस्य शेष ६८ सदस्यों को आमंत्रित करेंगे, और कहेंगे : 'हम लोगों को जनता ने चुना है। हमें सरकार बनानी और चलानी है। जिस तरह ग्रामसभा में सरकारी दल और विरोधी दल नहीं हैं उसी तरह यहाँ भी नहीं होना चाहिए। होने की जरूरत भी क्या है ? आइए, हम सब इकट्ठा बैठ जायँ, सर्वसम्मति से नेता चुन लें, और गाँवों को सामने रखकर एक कार्यक्रम तय कर लें। दल, या दल-बदल का प्रश्न हमेशा के लिए खत्म कर देना चाहिए। विधान-सभा में हम लोग क्षेत्र के क्रम में बैठें, सरकारी दल, विरोधी दल के अनुसार नहीं।' क्या आप समझते हैं कि गैर-ग्रामदानी सदस्यों को इस बात का असर नहीं पड़ेगा ?

एकदलीय नहीं, सर्वदलीय सरकार

प्रश्न : नहीं, न पड़ने का कोई कारण नहीं है। तो क्या गैर-ग्रामदानी सदस्य मंत्री हो सकते हैं ?

उत्तर : कोई रुकावट नहीं है। जिस तरह सर्वसम्मति से नेता चुना जायगा जो मुख्य मंत्री होगा उसी तरह सर्वसम्मति से दूसरे मंत्री भी चुन लिये जा सकते हैं, या मुख्य मंत्री को दूसरे मंत्री चुनने का अधिकार दे दिया जा सकता है, और वह योग्यता के आधार पर गैर-ग्रामदानी सदस्यों में से भी कुछ मंत्री ले सकता है।

प्रश्न : लेकिन यह बताइए कि जब विरोधी दल नहीं रहेगा तो सरकार को भूलें कौन बतायेगा ?

उत्तर : आज क्या होता है ? विरोधी दलों का काम है गलती निकालने का, और सरकारी दल का काम है गलती न मानने का। इससे क्या काम बनता है सिवाय व्यर्थ विवाद के ? लेकिन ग्रामदान की पद्धति में केवल विरोधी दल को नहीं, हर सदस्य को आलोचना करने का अधिकार होगा। हर आदमी अपनी बात कहेगा और दूसरे की बात सुनेगा, और कोशिश करेगा कि हर कठिनाई का कोई सही हल निकले। आज तो सदस्यों पर उनकी पार्टी का अंकुश रहता है और वे पार्टी की नीति-रीति से अलग हटकर कोई बात कह नहीं सकते। लेकिन तब ऐसा कोई बन्धन नहीं रहेगा। तब सरकार विफल होगी तो सब सदस्य मिलकर उसे हटा देंगे, लेकिन यह नहीं होगा कि तोड़-जोड़कर एक सरकार को हटा दें और उसकी जगह अपनी सरकार बना लें। उधर राज्य भर में फैले निर्वाचन-मंडल देखते रहेंगे कि सरकार ग्रामदान की लाइन में काम कर रही है या नहीं। →

www.vinoba.in

असफल ग्रामदानी गाँव ?

(उमरा-तिलायडीह)

राँची जिले में, खासकर गुमला अनुमंडल में, मैं जहाँ भी जाता किसी-न-किसी कोने से आवाज आती—"ग्रामदान-विचार तो बड़ा अच्छा है, पर आज के युग में जब पिता पुत्र का आपस में नहीं बनता तो ग्राम-परिवार कैसे बन सकेगा ? उमरा-तिलायडीह में हजारों रुपया नष्ट हुआ। हाँ, गोपाल खरिया ने अपना खूब घर भड़ा।" सारा समझाना-बुझाना इन दो वाक्यों से थोड़ी देर के लिए बेकार हो जाता। चर्चा-गोष्ठी के लोग मुझे एक भला बेवकूफ मानकर मुस्करा देते।

उमरा-तिलायडीह के समीप के बघिमा बाजार में ज्यों ही पहुँचा, मूसलाधार वृष्टि होने लगी। वर्षा के थमने के बाद, मेरे साथी ने गोपाल खरिया को ढूँढ़ना शुरू किया। यहाँ-वहाँ करते-करते हम गांधी-निधि सेवा-केन्द्र पर आये। वहाँ से गोपाल को बुलाने के लिए किसीको भेजना ही चाहता था कि गोपाल दिखाई पड़ा। यही है, मुजरिम बेचारा गोपाल, जिसकी आड़ लेकर लोग अपने दिमाग पर दीवाल कर ग्रामदान-विचार नहीं समझना चाहते हैं। एकदम भोला-भाला चेहरा। साफ कुरता, घुटने भर की धोती, उम्र ६०-६५ की होगी। थोड़ा पढ़ा-लिखा भी दीखा।

मैंने पूछा, "गोपाल खरियाजी, आपका ग्रामदान कैसा चल रहा है ?"

"क्या चलेगा बाबू, बड़ा हौसला था, पर सब बिखर गया।"

"फिर पड़ोस के लोग आपकी शिकायत क्यों करते हैं ?"

"मेरा गाँव और ग्रामीण, दोनों दस कदम की दूरी पर हैं। मैं गाँव को बना नहीं सका, तो बिगाड़ा भी नहीं है।" वह बोला।

गोपाल के आग्रह पर गाँव की परिक्रमा पर निकला। दूर से ही गाँव आकर्षक मालूम होता है। कल्याण-विभाग से सैकड़ों गाँव बने होंगे, पर ऐसा ठोस मकान एवं इस प्रकार की योजना मैंने कहीं नहीं देखी। बीच में एक बड़ा-सा प्रार्थना-भवन, उसकी एक ओर धर्म-गोला तथा दूसरी ओर उद्योग-मंदिर, इनके चारों ओर चौड़ा रास्ता और रास्ते के बाद ग्रामीणों के पंक्ति-बद्ध मकान। गाँव के दक्षिणी छोर पर गाँव के खेत नजर आते हैं। ३३० बीघे ग्रामीणों की कुल जमीन। इस जमीन के बाद काली-पहाड़ी के घुले हुए चट्टानों पर से बहती हुई जलधारा पर सूर्य की किरणें पड़ रही हैं। ऐसा मालूम होता है, वह पहाड़ी ग्रामीण बहनों की तरह चाँदी के गहने पहनी हो ! गोपाल ने एक बड़ा-सा तालाब खोदकर पहाड़ी का पानी बटोर लेने की व्यवस्था कर ली है। तालाब की ओर चट्टानों से चबूतरा बना है। पास-पड़ोस के लोग वहाँ के साफ जल में स्नान के लिए आते हैं।

गोपाल बता रहा है—"इसी वृक्ष का छाया में बहन विमला ठकार ने इस ग्रामदान का उद्घाटन किया था।" सन् '५७ में श्री वैद्यनाथ बाबू की प्रेरणा से वह भूदान के लिए पागल बना था—"कैसा अच्छा लगता था उस समय ! प्रातः चार बजे सामूहिक प्रार्थना, सामूहिक श्रमदान, सामूहिक योजना। गाँव में शादी-ब्याह की व्यवस्था ग्राम-स्वराज्य समिति के द्वारा होती है।"

ग्रामीण पड़ोसी गाँव की स्वतंत्रता देखकर ललचाने लगे। साहूकार ने नारा लगाया कि गोपाल संस्था और सरकार से हजारों-हजार रुपया लाता है, पर गाँववालों से श्रमदान कराकर पैसा बचा लेता है। संस्था के सेवकों को भी गोपाल खरिया का खरा स्वभाव खलता था।

सबसे दर्दनाक हुआ, गोपाल की स्वयं की चोरी। पक्ष, पंच; दोनों की बिलाव-दृष्टि गोपाल के समर्थ व्यक्तित्व पर पड़ी। गोपाल एसेम्बली का उम्मीदवार बनाया गया। और वह चलाता है क्रिस्तानी आदिवासियों के मुकाबले पाठा-समाज। गोपाल की व्यापक बदनामी का रहस्य उसकी इन्हीं दो भूलों में है।

उमरा-तिलायडीह का ग्रामदान विफल हुआ, लेकिन आज भी वहाँ की ग्रामसभा चलती है, धर्मगोला जमा होता है, उद्योग चलता है, सबसे बड़ी बात, इस गाँव में कोई भूख के कारण नहीं मर सकता, परमात्मा की कृपा से भारत के सभी ग्राम उमरा-तिलायडीह की तरह आज की भी स्थिति तक पहुँच जाय तो भारत की दरिद्रता की कालिख धुल जाय।

—निर्मलचन्द्र

→ सरकार पर असली अंकुश जनता की प्रतिकार-शक्ति का होता है। आजकल विधान-सभा और संसद में बहुत 'विरोध' दिखाई देता है, लेकिन बाहर जनता इतनी कमजोर है कि किसी गलत चीज का मुकाबिला नहीं कर सकती। उसकी यह कमजोरी दूर होनी चाहिए। उसमें इतनी शक्ति होनी चाहिए कि सरकार के अन्याय का प्रतिकार कर सके। निर्वाचन-मंडल और ग्रामसभाओं का यह काम होगा। तभी सरकार जनता की होगी। अब दलों की सरकार समाप्त करके जनता की सरकार बनानी है।०

www.vinoba.in

जिलादान मानी क्या ?

जिलादान के मानी है ग्रामराज की नींव डालना। ग्रामराज की कल्पना गांधीजी की है। हिन्दुस्तान की आजादी के दिन दिल्ली में एक बड़ा समारोह हुआ। लार्ड माउण्टबेटन ने जवाहरलाल नेहरू को सत्ता सौंप दी। कहा जाता है कि १५ अगस्त को दिल्ली में लोगों के हाथ में सत्ता सौंप दी गयी, जिस सत्ता से लिए २५ वर्षों तक गांधीजी ने युद्ध किया। स्वाधीनता दिलाने में गांधीजी का सबसे बड़ा हाथ था। आपको यह जानकर ताज्जुब होगा कि दिल्ली के इस समारोह में गांधीजी दिल्ली में नहीं थे। गांधीजी का रहना आवश्यक था, क्योंकि उन्हींकी वजह से लोगों को स्वाधीनता मिली थी। जवाहरलाल आदि ने गांधीजी से बहुत आग्रह किया कि आप कम-से-कम एक दिन के लिए दिल्ली आयें, पर उन्होंने इनकार किया। वे दिल्ली क्यों नहीं आये ? उन्होंने इनकार करते हुए कहा, "यह मेरे स्वप्नों का स्वराज्य नहीं है।" वे उन दिनों कलकत्ता में थे। वहां हिन्दू-मुस्लिम आपस में एक-दूसरे का गला काट रहे थे, लड़ रहे थे। उन्होंने कहा कि मेरे स्वप्नों का स्वराज्य होता तो हिन्दू-मुसलमान आपस में एक-दूसरे का गला नहीं काटते।

स्वराज्य के १२ वर्ष हुए, पर अभी तक हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे का गला काटते हैं। अभी भी देश में अस्पृश्यता कायम है। अभी भी शंकराचार्य जैसे लोग देश में हैं, जो कहते हैं कि यदि किसी अछूत को मैं स्पर्श करूंगा तो घर जाकर स्नान जरूर करूंगा। अभी कुछ दिनों पहले कुछ राज्यों में चुनाव हुए। इस देश में सबको मतदान का अधिकार मिला है। यही लोकराज्य का अर्थ है। राज्य बनाना या तोड़ना, यह लोगों के हाथ है। इस चुनाव में क्या हुआ ? हजारों हरिजनों को जबर्दस्ती, बलपूर्वक मत देने से रोका गया। क्या उनके लिए स्वराज्य हुआ है ? आज देश में मुट्ठी भर लोगों के लिए स्वराज्य हुआ है। १५ अगस्त को दिल्ली में सूर्योदय हुआ। परन्तु भारत के ७ लाख गांवों में उस समय अन्धकार था, रात थी, और आज भी अन्धकार है। लोग कहते हैं कि दिल्ली में स्वराज्य हुआ, पर हम तो अन्धेरे में हैं। १५ अगस्त को गांधीजी ने कहा कि यह मेरा स्वराज्य नहीं है, दिल्ली, भुवनेश्वर के लिए स्वराज्य आया है। आपमें से जो लोग गये होंगे, उन्होंने देखा होगा वहां बड़ी-बड़ी इमारतें हैं, बड़े-बड़े रास्ते हैं, बिजली है, बड़ी बड़ी दूकानें हैं। उसकी तुलना में देहातों में क्या है ? करीब-करीब अंधेरा है। देहात के जीवन के बारे में पहले सोचा जाय, यह गांधीजी चाहते थे।

खून चूसने का काम एक रास्ते से नहीं हो रहा है, अनेक रास्तों से हो रहा है। गरीब गरीब बनता जा रहा है और धनी धनी बनता जा रहा है। ज्यादा सुविधा शहरों में है। गांवों में अधिक लोग रहते हैं, पर सुविधा कम है। आज व्यवस्था ऐसी है कि सिर नीचे और पैर ऊपर हैं। सारा समाज सिर पर चल रहा है, पैर पर नहीं। सारा उत्पादन शहरों में जाता है। गांधीजी यह शीर्षासन-पद्धति बदलना चाहते थे।

ग्रामराज और पाकिस्तान से लड़ाई, ये दोनों बातें एक जगह बैठती नहीं। जबतक ग्रामराज नहीं होगा तबतक लड़ाई बंद नहीं हो सकती। इसलिए ग्रामराज की स्थापना करनी है, लड़ाई रोकनी है। आज सत्ता और सम्पत्ति केन्द्रित है। अपने देश में ही नहीं, सारी दुनिया में यही सिलसिला चल रहा है। दस्तखत करनेवाले को ज्यादा पैसा और हल चलानेवाले को कम पैसा ! गांधीजी चाहते थे कि समाज के सब लोग श्रम करें। गांधीजी ने कहा था कि मेरा पेशा खेती का और बुनकर का है। यह क्यों कहा ? उनका कहना था कि किसान सबको खिलानेवाला और बुनकर सबको कपड़ा देनेवाला है। यह लोगों की बुनियादी आवश्यकता है, राष्ट्रपति से किसान को पैसा क्यों कम मिलना चाहिए ? गांधीजी कहते थे कि नाई को और वकील को समान मजदूरी मिलनी चाहिए। गांधीजी ने कहा था कि राजधानियों में जो सत्ता है वह सूख जानी चाहिए।

हम लेने को तैयार हैं, देने को कम तैयार हैं। आज भी देते हैं तो लाभ के कारण देते हैं। अधिक भूमिवाले देते नहीं हैं। गरीबों के लिए पहले त्याग, उसके बाद लाभ। ग्रामसभा के माने हैं कि हमने जीवन में त्याग स्वीकार किया है। गांधीजी कहते थे कि मानव का जीवन त्याग है, भोग नहीं।•

—शंकरराव देव

www.vinoba.in

आजाद गाँवों का आजाद भारत

आज हमारे देश को योजना हमारे हाथ में नहीं है। भारत देखता है कि पाकिस्तान का क्या बजट है, सेना पर उसने क्या खर्च करने का सोचा है और तदनुसार अपना बजट बनाता है। पाकिस्तान भी भारत की तरफ देखकर अपना बजट बनाता है। रूस और अमेरिका भी, ऐसे ही एक-दूसरे की ओर देखकर अपना बजट बनाते हैं। यानी आपकी योजना पाकिस्तान के हाथ में और उसकी आपके हाथ में है। जो राष्ट्र योजना बनाने में आजाद नहीं, वह वास्तव में आजाद नहीं, गुलाम है। अब यही देखिए, भारत सरकार के ध्यान में आता है कि शिक्षा पर इतना-इतना खर्च करना चाहिए, फिर भी नहीं करती; क्योंकि युद्ध पर बहुत खर्च करना पड़ रहा है। इसका नाम है गुलामी। जबतक एक-दूसरे का इस तरह डर बना हुआ है, तबतक कोई भी राष्ट्र स्वतंत्र नहीं।

हमारा देश खेतीप्रधान देश है, उद्योगप्रधान नहीं। फिर भी अगर खेती की ओर ध्यान न दिया जायेगा, तो देश को खतरा है। सरकार यह समझती है, पर लाचार है बेचारी, उसको क्या दोष दिया जाय! जबतक गाँव-गाँव आजाद नहीं बनता, गाँवों की ताकत नहीं बनती, तबतक केन्द्र कमजोर रहेगा। देश तबतक सुरक्षित नहीं बन सकता, जबतक गाँव-गाँव मजबूत नहीं बनते। इस वास्ते जब पाकिस्तान से लड़ने का मौका आया, तब शास्त्रीजी ने एक नारा चलाया—"जय जवान, जय किसान"। लड़ाई का मौका है तो, "जय जवान" कहना ठीक है, पर "जय किसान" क्यों कहा लड़ाई के मौके पर? इसलिए कि गाँव-गाँव में उत्तम खेती हो, गाँव अपने पाँव पर खड़े रहें, गाँवों की चिंता सरकार को ज्यादा न करनी पड़े, इस हालत में सरकार परदेश से लड़ सकती है। लेकिन अगर उलटा हुआ और उस हालत में बाहर से हमला हुआ, तो क्या लड़ोगे? फिर अमरीका से कहेंगे—हे अन्नपूर्णा देवी! अन्न पूर्ण करो! हमारा पालन-पोषण, रक्षण, शिक्षण, सब अमरीका करेगा। और आप रहेंगे आजाद। कौन स्वतंत्रता है यह! आजकल कोई राष्ट्र किसी राष्ट्र को अपने कब्जे में नहीं रखेगा। किसीका कब्जा लेना महँगा पड़ता है। इसलिए कब्जा नहीं लेंगे, पर उनका प्रभाव आप पर रहे, इसका पूरा प्रयत्न करेंगे। आज हमारे आजाद देश की यह स्थिति है।

इसलिए जब शिक्षकों की शक्ति खड़ी होगी, तब भारत खड़ा होगा। आज शिक्षक की हैसियत नौकर की है। हमारे भारत में, प्राचीन काल में शिक्षकों पर, आचार्यों पर किसी बादशाह का भी अंकुश नहीं रहता था। आज शिक्षक सरकार के नौकर हैं। क्या शिक्षा देनी है, यह सरकार तय करती है और तदनुसार शिक्षक सिखाता है।

बाबा चाहता है कि शिक्षकों की हैसियत फिर से खड़ी हो। शिक्षक गाँव के 'फ्रेण्ड, फिलासफर एण्ड गाइड' बन जायँ, तो गाँवों को खड़ा करने का काम जल्दी होगा। बिहार में पौने दो लाख शिक्षक हैं और सत्तर हजार गाँव हैं। हर गाँव के पीछे ढाई शिक्षक हैं। ग्रामदान-प्राप्ति के बाद एक-एक शिक्षक एक-एक गाँव के साथ सम्बन्ध रखेगा। तभी आजाद गाँवों के आजाद देश की स्थिति फिर आयेगी।

—विनोबा

हजारीबाग, ४-५-'६४

• देश में कुल ८० लाख तपेदिक के रोगी—५ लाख हर साल मरते हैं।

बूढ़ों को मरने दो—

• इंग्लैण्ड के डा० केनेथ विकरी ने कहा है कि अस्पतालों में जो सुविधाएँ हैं उनका ज्यादा लाभ बूढ़े लोग ले रहे हैं। कई जवान लोगों को इस कारण जगह नहीं मिलती, क्योंकि सब जगहें बूढ़ों से भरी रहती हैं। उनकी राय है कि ८० के आयु के बाद जो बुढ़ापे के कारण मरने की ओर हो उसे विज्ञान की मदद से बचाने की कोशिश न की जाय। उसे मरने दिया जाय। विज्ञान की सेवा पहले युवकों को मिलनी चाहिए।

ज्यादा बच्चे समस्या, बूढ़े समस्या और जवान तो समस्या हैं ही। आज के गलत समाज में हम सब एक-दूसरे के लिए समस्या बन गये हैं। बूढ़े इसलिए समस्या बने हुए हैं, क्योंकि उन्हें भोग की वे सारी चीजों की आवश्यकता है जो जवान को चाहिए। वानप्रस्थी बूढ़ा समाज की समस्या नहीं, उसका उपयोगी सेवक होता है। लेकिन जीवन के आखिरी दिन तक गृहस्थ बन रहने की लिप्सा बहुत-सी समस्याओं की जड़ है।

www.vinoba.in

सच्चा अर्थशास्त्र

मई के प्रथम सप्ताह की बात है। मैं एक बस-स्टैण्ड पर लाइन में खड़ा था। थोड़ी ही देर में एक महाशय मेरे पीछे आकर खड़े हो गये। वह शुद्ध टैरोलीन के कपड़े और बाटा के हाईक्लास जूतों में शोभायमान थे। एक हाथ में चमड़े का बैग व दूसरे में गोल्ड फ्लैक की सिगरेट तथा आँखों पर काला चश्मा लगा था। पास ही सड़क पर एक छोटा-सा 'वर्कशाप' था, जहाँ लोहे के छोटे-छोटे पुरजों पर पालिश का काम हो रहा था। कुछ कारीगर लेथ मशीन पर भी काम कर रहे थे। वर्कशाप के नीचे सड़क पर जहाँ हम लोग बस के लिए खड़े थे, आठ-दस वर्ष के तीन बच्चे मशीन से सम्बन्धित कुछ पुरजों की सफाई कर रहे थे। उनके हाथ, कपड़े व शरीर कालिख से पुते हुए थे। उन तीनों की दृष्टि मेरे पास खड़े अप-टू-डेट साहब पर थी। साहब ने सिगरेट का धुआँ छोड़ते हुए तथा अपना चश्मा हाथ में लेते हुए बच्चे से पूछा, "रोज कितने मिलते हैं तुमको ?"

"हमें तीस रु० महीना मिलता है।"—बच्चों ने जवाब दिया।

"काम कितना करना पड़ता है ?"

"सुबह आठ बजे से रात के आठ बजे तक।"

"ऐं ! बारह घंटे !" इतना कहकर साहब ने खड़े लोगों को भाषण सुनाना शुरू कर दिया—"हमारी सरकार ऐसी निकम्मी है कि स्कूल जानेवाले बच्चों को जो लोग काम पर लगाते हैं, उनके खिलाफ कुछ नहीं करती। अभी तो इन बच्चों की उम्र पढ़ने-लिखने की है !"

बच्चों ने कहा, "यदि सरकार हमें पढ़ने के लिए कहेगी भी तो हम नहीं जायंगे !"

"क्यों ?"

"साहब ! आप बड़े आदमी हैं। आप दफ्तर में बाबू बनकर काम करते हैं। खूब रुपया मिलता है। आपके बच्चे स्कूल जा सकते हैं। हम लोगों के घर पर तो एक वक्त का भोजन भी नहीं रहता है। हम पढ़ेंगे तो खायेंगे क्या ?"

बाबूजी चौंके और बोले, "पढ़ेंगे तो खायेंगे क्या ? अरे दुनिया तो खाने-कमाने के लिए ही पढ़ती है। तुम उल्टी ही बात कहते हो !"

"हाँ, वह सब आपके लिए है !"

"क्या तुम्हारे माँ-बाप नहीं हैं ?"

"सब हैं। पर माँ-बाप क्या करें ! वे चाहें तो भी ज्यादा नहीं कमा सकते, और न हमें पढ़ा सकते हैं। हमारे घरों में चमड़े का काम होता था। गाँव के चार परिवार इस काम को करते थे। सभी का धन्धा चलता था और खाने को रोटी मिल जाती थी। हम पहले दर्जे में पढ़ते भी थे। धीरे-धीरे हमारे यहाँ चमड़े का काम बन्द हो गया। किसे पसन्द आये हमारा जूता ! बाटा का जूता सबको भाता है। जब गाँव में पेट नहीं भरा तब हम दिल्ली भाग आये हैं। हमारी माँ चौका-बर्तन करती है, बाप आइस्क्रीम बेचता है और हम यह नौकरी। सब काम करते हैं तो शाम को रोटी मिल जाती है।"

बच्चों के मुँह से ऐसी अर्थशास्त्र की बात सुनकर साहब चुप रह गये। अन्य दूसरे यात्री बच्चों की इस होशियारी भरी बात से प्रसन्न भी थे और हम जैसे कुछ लोग दिल-ही-दिल भारत के इस अर्थशास्त्र के प्रति खिन्न भी ! समाज का एक अंग दूसरे अंग के दुःख-दर्द को कब समझेगा ? क्या कभी समझेगा भी ?•

• सन् १९६९-७० में सरकार ने जो कर लगाये हैं उनमें—

७१ प्रतिशत प्रशासन में खर्च होगा,

१४ प्रतिशत विकास में, और

१५ प्रतिशत प्रतिरक्षा में लगेगा।

इन आँकड़ों से ज्ञात है कि देश का प्रशासन कितना बोझिल और खर्चीला होता जा रहा है और नतीजा क्या है ? सरकार का खर्च बढ़ता है, लेकिन सरकार समस्याएँ कितनी हल कर पाती है ? दिनों दिन यह बात साफ होती जा रही है कि सरकार अपने और अपने नौकरों को पालने के लिए कर लगाती है, न कि समाज की सेवा के लिए। समाज को अपनी सेवा चाहिए तो पहले सेवा के साधनों को सरकार के हाथों में देकर फिर उससे माँगा जाय यह उल्टा काम क्यों ?

www.vinoba.in

प्रीत की नयी रीत

नतिनी के जनम पर सोहर गाने और झूम-झूमकर नृत्य करने का नया रिवाज पारवती ने शुरू क्या किया कि गाँव में एक नया बवंडर खड़ा हो गया !

रामदेव की बहिनतारा ने पारवती के घर से बाहर निकलते समय मीठी चुटकी लेते हुए कहा—"जिसके घर में गंगा बहती हो वह भला काशीजी में गंगा नहाने क्यों जायेगा ? लो भैया ! अब थोड़े ही समय में अपना गाँव इन्द्रलोक हो जायेगा। घर-घर में अप्सराएँ अपने-अपने देवता का दिल बहालायेंगी। घर के मरदों को अब घर के बाहर झाँकने-ताकने की जरूरत नहीं रहेगी।"

चौथिया ने तारा की ये बातें सुनीं तो फौरन समझ गयी कि तीर का निशाना किसे बनाया जा रहा है। उसने तारा की ओर एक आँख दबाकर देखते हुए कहा—"हाय, मेरी टिल्लो को तो किसीने पूछा हो नहीं। यह छरहरी काया, यह ऊँटनी जैसी चाल और किसीको डँस लेने के लिए तैयार नागिन जैसे सिर के ये घुँघराले बाल ! मेरी लाड़ली ननद किस अप्सरा से कम है ?" फिर रामदेव को लगभग धकियाते हुए चौथिया ने सुनाया—"ए ननदोई भाई ! तुम नहीं समझते, लेकिन मैं अपनी लाड़ली ननद की पीर को समझती हूँ। दोपहर की लूह ये भले ही सह ले जाय, लेकिन सावन-भादों की अँधियारी रात ये कैसे झेल पायेंगी ?"

रामदेव ने चौथिया की बातों का रुख दूसरी ओर मोड़ते हुए कहा— "रस्सी जल गयी, लेकिन ऐंठन ज्यों की त्यों है ! अभी भी तुम्हारा नाचने-गाने का मन हो जाता है ? ४ बच्चों की माँ हो गयी हो। जरा कभी-कभी आईने में अपने खिचरहे बालों की ओर भी नजर डाल लिया करो।"

चौथिया ने रामदेव को आड़े हाथों लेते हुए कहा—"लाला, मैं जब यहाँ आयी तो तुम लंगोटी पहने गली में गुल्ली-डंडा खेलते थे। गुल्ली-डंडा छोड़कर न जाने कब तुम कुदाल-फरसा चलाने लगे ! तुम्हारी बंसरी तो मैंने कभी सुनी नहीं। राम को तो धनुष तोड़ने के बाद सीताजी का संग नसीब हुआ था और तुम्हें घर बैठे-बैठे ही बहुरिया मिल गयी ! तुम क्या जानोगे कि रस्सी की ऐंठन क्या चीज होती है। अगर इस जमाने में कहीं फिर से स्वयंवर होने लगे तो तुम्हारे जैसे न जाने कितने कूँवर जिन्दगी भर कुँवारे ही रह जाते !"

आपकी नयनतारा को अभी यह समझ में नहीं आया कि दीदी पारवती लाख में एक है। वह हम औरतों का जनम-जनम की जहालत से छुटकारा दिलाना चाहती है। वह कहती है कि भगवान की निगाह में लड़का-लड़की समान हैं। वेद-शास्त्र में भी दोनों को एक-सा मानते हैं। फिर लड़की के जनमने पर हम नाहक अपना मन क्यों छोटा करें ?

अपनी खुशी के लिए गाना-नाचना और आनन्द मनाना एक बात है और पैसा कमाने या दूसरे को रिझाने के लिए हावभाव दिखाना अलग बात है। इन दोनों में उतना ही भेद है, जितना गंगाजल और गड़ही के पानी में। पारवती दीदी ने जो कुछ नयी रीत चलायी है वह प्रीत की रीत है, अनरीत नहीं।

चौथिया जब रामदेव की ओर देखते हुए इतनी बातें फर्राटे से बोल गयी तो रामदेव की काकी अपनी हुक्की पर से चिलम उतारते हुए बोलीं—"कितना जमाना देख चुकी, अभी और न जाने क्या-क्या देखना है ! औरत की हवा चली जाती है, फिर वह कहीं की नहीं रह जाती। हमारी इतनी जिन्दगी बीत गयी, पर किसी आदमजाद को हमने आँख उठाकर नहीं देखा। हमें भी कभी चहकने-फुदकने की जिन्दगी मिली थी, लेकिन हमने तो बस जाँगर कूटकर घर के प्राणियों को खिलाया-जिलाया। और इसीमें हमारी जिन्दगी बीत गयी। अब नयी बहुरियों का जमाना है। चाहे घर बसायें या बहावें ! औरत जात नाच सकती है, मर्द को अपने इशारे पर नचा सकती है, लेकिन वह मरदों की बराबरी कैसे कर सकती है ?"

चौथिया ने कहा—"भैया, तुम्हारा राम राम कहने का समय है। वही करो। जमाने का बखान करने के पचड़े में नाहक पड़ती हो। जमाने की हवा के साथ बगिया को लहराना ही पड़ता है।

—त्रिशंकु

वैभव की फैलती दुनिया और टूटता-बिखरता आदमी

www.vinoba.in

आदमी की भौतिक जरूरतों की और उसके भोग की क्षमता की भी एक सीमा होती है, जिसके बाद भोग से उसके अन्दर अरुचि पैदा हो जाती है। वस्तुओं के भोग से ऊबकर मनुष्य-मनुष्य के सम्बन्धों की खोज में लगता है, लेकिन कोशिश होती है कि मनुष्यों का समुदाय मिलकर समाधान की कोई दिशा ढूंढ़ें, या फिर वह समाज से विमुख होकर ईश्वर की तलाश में भागता है।

आज इंग्लैण्ड-अमेरिका आदि देशों में वहाँ की नयी पीढ़ी के लोग भौतिक वैभव से ऊबकर मन के समाधान के लिए तरह-तरह की कोशिशें कर रहे हैं। इन्हीं कोशिशों में एक कोशिश है—स्त्री-पुरुष के मुक्त मैथुन-सम्बन्ध। शायद उनको इसका आभास अभी नहीं मिल पाया है कि स्त्री-पुरुष का मैथुन-सम्बन्ध भी भौतिक भोग का ही एक रूप है और उसकी भी एक सीमा है।

इस मुक्त मैथुन-सम्बन्ध के परिणाम कितने भयानक हैं, यह नीचे के तथ्यों से पता चल सकेगा :

(१) इन देशों में एक नारा लग रहा है, जब जैसा जो कुछ करने को जी चाहे, उसे करो।" जिसके परिणामस्वरूप पारिवारिक जिन्दगी के टुकड़े हो रहे हैं, आदमी-आदमी के सम्बन्धों में कोई स्थिरता और सन्तुलन नहीं रह गया है। सीधी-सी बात है कि अपने अन्दर के विकारों को समझदारी के साथ कम करने की कोशिश के बजाय उसको उभड़ने का अवसर देंगे, तो आदमी का आदमी के साथ रहना असम्भव ही हो जायेगा।

(२) गुप्त रोगों, खासकर गर्मी और सुजाक से पीड़ित मरीजों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। अमेरिका के डाक्टरों ने यह घोषणा की है कि उत्तरी अमेरिका और पूरे पश्चिमी जगत् में इन रोगों की रोक थाम अब सम्भव हो गयी है।

(३) इसके परिणामस्वरूप एक प्रकार का कैंसर रोग तेजी से फैल रहा है। दुनिया की प्रसिद्ध अंग्रेजी साप्ताहिक पत्रिका 'न्यूजवीक' के २१ अक्तूबर '६८ के अंक में प्रकाशित एक रिपोर्ट में कहा गया है कि गुप्त रोगों के कारण चालीस हजार महिलाओं को इस प्रकार का कैंसर रोग हर साल होता है, जिसका कोई इलाज नहीं है।

(४) अकेले अमेरिका में हर साल तीन लाख अवैध बच्चे पैदा होते हैं! वहाँ का हर चौदहवाँ बच्चा नाजायज सम्बन्धों से पैदा होता है। इन अवैध बच्चों की अविवाहित माताओं में १०० में ४४ माताओं की उम्र २० वर्ष से भी कम होती है! अमेरिका का महानगर न्यूयार्क तो कई बातों की तरह इस मामले में भी सबसे आगे है! वहाँ पैदा हुए हर छः बच्चों के बाद एक बच्चा नाजायज सम्बन्धों से पैदा होता है। इंग्लैण्ड में भी तेरह बच्चों में एक बच्चा नाजायज सम्बन्धों से पैदा हुआ है और अंदाजन हर सात में से एक बच्चा शादी के दायरे से बाहर के सम्बन्धों का है। आस्ट्रेलिया में बारह में एक, न्यूजीलैंड में में आठ में एक बच्चा नाजायज सम्बन्धों से पैदा हुआ है। यहाँ तक कि सोवियत रूस, जो ऊँची नैतिकता का दावा करता है, वहाँ भी हर नौ बच्चों के बाद एक बच्चा बगैर शादी के हुए सम्बन्धों से पैदा हुआ है।

('यू० पी० आई०', मास्को, २६ अप्रैल १९६७ के अनुसार)

(५) बहुतेरे आधुनिक लोग यह कहते हैं कि जायज कहे जानेवाले और नाजायज कहे जानेवाले इन बच्चों में कोई फर्क नहीं है। नैतिकता का सवाल कुछ देर के लिए छोड़ भी दिया जाय तो भी शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से ही कुछ महत्त्व के तथ्य सामने आये हैं, जो दर्दनाक हैं। पेरिस के एक बड़े डाक्टर ने चेतावनी दी है कि नाजायज बच्चे औरों की तुलना में अधिक बेडौल और मरीज होते हैं। अल्पायु में उनकी मृत्यु अधिक होती है। पिता का साथ न होने के कारण उनका अच्छी तरह शारीरिक और मानसिक विकास नहीं होता, और माँ-बच्चे के सम्बन्ध सामान्य नहीं रहते, आखिर में बच्चा दिमाग से कमजोर होता जाता है, मानसिक रोग भी उसके बढ़ते जाते हैं।

(६) शिकागो के एक विश्वविद्यालय में मानसिक रोगियों की जाँच करने पर पता चला कि १०० में ७२ से ८६ तक की संख्या के रोगियों का नाजायज मैथुन-सम्बन्ध एक या एक से अधिक लोगों के साथ हुआ है!

(७) वास्तव में इस आजादी से पश्चिम का मनुष्य अधिक सुखी हो, ऐसा दिखाई नहीं देता और शायद इस उन्माद को बढ़ाते जाने या खुली छूट देने से वह कभी सुखी हो नहीं सकता।

तब, आखिर क्यों मनुष्य लगातार इसी ओर बढ़ रहा है? सुख की तलाश में क्यों वह रोग और अशान्ति के पंजे में जकड़ता जा रहा है? कौनसी शक्ति उसे ऐसा करने के लिए मजबूर कर रही है?

(क्रमशः)

'गाँव की बात' : वार्षिक चन्दा : चार रुपये, एक प्रति : अठारह पैसे

सम्पादक : राममूर्ति : सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-१